प्राचीन भारत में दुर्भिक्ष : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० कुमारी रिचा*

भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत पर यही सोच कर सदा आक्रमण किया कि यहाँ अतुलित सम्पति है। इसका कारण था देश की समृद्धि। यहाँ के हिन्दू तथा बौद्ध धर्मानुयायी शासक न्यायप्रिय, नैतिक और आध्यात्मिक थे। उन्होंने जनकल्याण तथा लोक कल्याण की भावना से शासन किया। उत्पादन पर, चाहे कृषि के क्षेत्र में हो या व्यवसाय में, प्रगति के लिए राजकीय सहयोग और नियंत्रण रखा गया। उत्पादकों को सेना में भर्त्ती, सैनिक अभियान के समय सैन्य अत्याचार से बचाया गया और अपने क्षेत्र में कार्य करते रहने देने में बढ़ावा दिया गया। कर का बोझ कभी ऐसा नही बढ़ाया गया कि उनकी कमर टूट जाय या उत्पादक हतोत्साहित हो जाय। धर्मशास्त्रों में आर्थिक व्यवस्था के सूत्रों में सदा ऐसे ही सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं कि राज्य का व्यय भी चलता रहे और उत्पादक अपने पर उसका बोझ न अनुभव करें। वसूली की विधि, समय, स्थान ऐसे निर्धारित किए गए कि बिना किसी विरोध या दबाव के कर राज्य को मिलता रहे। पशुधन की सुरक्षा के लिए राजा प्रयत्नशील था। राजा अपनी ओर से गोचर भूमि छोड़ता था जहाँ जानवर स्वतंत्र होकर चरें। इनके लिए चिकित्सा व्यवस्था का भी दायित्व वहन करता था। अतः भौतिक क्षेत्र में व्यक्ति तथा राज्य देश की आर्थिक समृद्धि के लिए हर उपाय नैतिक धरातल पर करता रहता था। इससे देश बाहर से शक्तिशाली, समृद्ध और विकसित दिखता था। सभी देशी तथा विदेशी लेखकों ने इसके अतीत को गौरवपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बताया है।[1]

यूनानी यात्री मेगास्थनीज ने, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था, तत्कालीन भारत के संबंध में लिखा है कि देश में कभी अकाल नहीं पड़ा। यह कथन अतीत की सम्भवनाओं को निर्मूल करता है। पर यह बात केवल पाटलिपुत्र के संबंध में सही हो सकती है क्यों वह पाटलिपुत्र में ही उसने अधिकांश समय व्यतीत किया और उसके द्वारा दिया गया विवरण सुनी–सुनाई बातों पर अधिकांशतः आधारित है। इसलिए उसके अधिकांश वर्णन आज संदेह के घेरे में है और बहुत कुछ तत्कालीन ग्रंथ अर्थशास्त्र से मेल नही खाता। महास्थानगढ़ तथा सोहगौरा के अभिलेखों में अन्नागार द्वारा अनाज बाँटना तथा जैन स्त्रोतों द्वारा अकाल का वर्णन ऊपर के कथन को निराधार करता है। अकाल वैदिक काल से भी पहले से यहाँ था।[2]

***विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा।**

सिंधु घाटी में अन्नागार का मिलना, वहीं बगल में बाँध पर चकरियों के निशान तथा पीसने वालों के लिए झोपड़ों की व्यवस्था परिचायक है कि अकाल की सम्भावना थी या अकाल कभी पड़ा होगा जिससे सतर्क होकर यह व्यवस्था शासन की ओर से प्रजा रक्षण के लिए की गई हो। आज की तरह प्राचीन युग में भी कभी अधिक जल (अति वृष्टि) बरस जाता था और कभी कम वर्षा के कारण (अनावृष्टि) सूखा पड़ जाता था, इसके कारण फसले नष्ट हो जाती थी तथा दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। कभी–कभी चिड़ियों, कीड़ों–मकोड़ों, रोगों एवं टिडिड़ियों के कारण भी दुर्भिक्ष की स्थिति आ जाती थी। इसके अतिरिक्त युद्ध काल मे सेना द्वारा सारी फसलें रौंद दी जाती थी तथा खेत–खलियान जला दिये जाते थे, इसके कारण भी दुर्भिक्ष की स्थिति आ जाती थी। अतः मुख्यतः दुर्भिक्ष के चार कारण थे।[3]

1. अतिवृष्टि (बाढ़)
2. अनावृष्टि (सूखा)
3. रोग तथा टिडिड़ियाँ
4. युद्ध तथा सेना

जब दुर्भिक्ष हल्का होता था तो राज्य द्वारा प्रजा की सहायता कर दी जाती थी। मगर जब लम्बी अवधि तक तथा अधिक क्षेत्र में फैला हुआ होता था तो वहाँ के नागरिक वह राज्य छोड़ अन्यत्र चले जाते थे। अतः मनुष्य आदिकाल से ही प्रकृति के प्रकोप से डरता था तथा उसकी पूजा करता था। ऋग्वैदिक काल में सूखे के कारण अन्न के उत्पादन न होने से अकाल पड़ने का उल्लेख प्राप्त होता है। अनेक देवताओं की प्रार्थना यहाँ इसलिए की गई है कि वे पृथ्वी पर वर्षा कर अकाल और सूखे से धरती की रक्षा करें। अथर्ववेद में कुछ ऐसे मंत्रों का भी संकलन है जो फसलों पर लगने वाले कीड़ों, फसलों को हानि पहुँचाने वाले जीव–जंतुओं, अतिवृष्टि, अनावृष्टि से धरती की रक्षा करें। उत्तर वैदिक कालीन कौशिक सूत्र भी फसलों के हानिकारक कीड़ों के नाश की विभिन्न रीतियों का उल्लेख करता है।[4] अथर्ववेद में हमें बिजली, सुखा तथा बाढ के प्रभाव को समाप्त करने संबंधित मंत्र मिलते है।[5] अथर्ववेद में ही जल्दी तथा उचित मात्रा में वर्षा होने के लिए भी मंत्रों का उल्लेख मिलता है।[6] अच्छे मौसम के लिए भी प्रार्थनाओं का उल्लेख अथर्ववेद में है।[7] मौसम के संबंध में भविष्यवाणी करने वाले व्यक्ति का भी उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है।[8] टिडिड़ियों तथा फसलों के लिए नुकसान दायक कीटों को नष्ट करने के लिए भी मंत्रों का उल्लेख है।[9]

उपनिषद् में टिडिड्डियों द्वारा फसल के नष्ट होने के फलस्वरूप पड़ने वाले दुर्भिक्ष का उल्लेख मिलता है। इस दुर्भिक्ष के ही कारण ऋषि चाक्रायण को कुरू प्रदेश छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा तथा कुल्माष खाकर जीवन–यापन करना पड़ा।[10] अतः दुर्भिक्ष के कारण लोगों को अपना घर छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ता था तथा मांस इत्यादि भी खाना पड़ता था।

दुर्भिक्ष पीड़ित व्यक्तियों के द्वारा साँप का मांस खाने का उल्लेख मिलता है।[11] सुत्रनिपात में वैशाली के नागरिकों को सूखा तथा प्लेग से बचाने के लिए भूतों की पूजा करने का उल्लेख मिलता है।[12] दुर्भिक्ष के समय जनता खाद्य वस्तुओं के उपयोग समझ–बूझकर करती थी तथा संघ के कुछ चुने भिक्षुओं को ही भोजन करती थी।[13] डायोडोरस के अनुसार भारत की सभी भूमि उपजाऊ थी तथा नदियों से सिंचाई होने के कारण पर्याप्त मात्रा में अन्न ऊपजता इसीलिए ऐसे दुर्भिक्ष उस समय नही पड़ते थे कि महामारी की स्थिति आ जाये।[14]

महाकाव्य काल तक जब योग्य भूमि के विस्तार के लिए बड़े–बड़े जंगल काटे जाने लगे तो वर्षा की कमी हो गई तथा दुर्भिक्ष की संभावना बढ़ गई।[15] दुर्भिक्ष के कारण ऋषि विश्वामित्र के अपना स्थान छोड़कर जाने का भी उल्लेख मिलता है।[16] रामायण में दस वर्षो वाले दुर्भिक्ष का उल्लेख मिलता है।[17] महाभारत के कुछ राज्य के 12 वर्ष तक चलने वाले दुर्भिक्ष का उल्लेख मिलता है। महाभारत में ही एक अन्य 12 वर्षीय दुर्भिक्ष का उदाहरण भी मिलता है। महाभारत के अनुसार सारे कुएँ, झील आदि सूख गये थे तथा महामारी की स्थिति आ गई थी। लोग एक दूसरे का अन्न लूटने लगे थे। ये सभी वर्णन काल्पित प्रतीत होते है। सम्भवतः इनका वर्णन धार्मिक कारणों से किया जाता था। भारतीय इतिहास के स्त्रोत मुख्यतः धार्मिक ग्रंथ है। इस काल की मान्यता थी कि राजा के पाप के कारण दुर्भिक्ष पड़ता है। राजा को प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों का ध्यान दिलाने के लिए ही इस प्रकार के उदाहरणों की कल्पना की गई होगी। धार्मिक शिक्षा देने के लिए ही अनेक बातों को बढ़ा–चढ़ाकर लिखा गया है।

जैन तथा बौद्ध ग्रंथों से भी अकाल का ज्ञान प्राप्त होता है। बुद्ध के समय काशी के राजा ब्रह्मदत्त के शासन के काल में तीन वर्षों तक वर्षा न होने से भीषण अकाल पड़ा था। एक जातक कथा में कलिंग के अकाल का उल्लेख है जिसमें भोजन के अभाव में लोग लूट–पाट करने लगे थे। महावग्ग में वेरंज में बुद्ध को बारहवें बार वर्षावास में इसलिए एक ब्राह्मण ने बुलाया था कि वह बौद्ध बन गया था। पर बुद्ध और संघ का सत्कार इसलिए नही कर सका कि वहाँ भीषण अकाल पड़ा था।[18]

चन्द्रगुप्त मौर्य के समय बिहार में भीषण अकाल का वर्णन जैन ग्रंथ से प्राप्त होता है जिसके कारण जैन तीर्थंकर भद्रवाहु ने अपने अनुयायियों के साथ

मगध छोड़ कर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया था। इसी कारण चन्दुगुप्त मौर्य जो एक जैन धर्मानुयायी था पाटलिपुत्र का राज्य अपने पुत्र को सौंप कर गुरू भद्रवाहु के साथ ही दक्षिण चला गया था। तभी से उत्तर और दक्षिण में स्थित बौद्ध दो सम्प्रदायों में विभक्त हुए श्वेताम्बर और दिगम्बर। सम्भवतः उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश और बिहार अकाल पीड़ित क्षेत्र था।[19]

बाद के काल में दक्षिण भारत में अकाल की बहुलता रही। इसका ज्ञान मुख्यतः वहाँ के अभिलेखों से होता है। चोल शासक राजेन्द्र द्वितीय के काल में आराकाट जिले मे भीषण अकाल पड़ा था। इसी प्रकार तंजौर जिले में कालोतुंग तृतीय के शासन काल में अकाल का ज्ञान एक अभिलेख से मिलता है। वहाँ के धार्मिक ग्रंथ कुर्रल तथा शिल्पदीकारम में भी अकालों का उल्लेख है। पश्चिमी भारत में कश्मीर में दसवीं शताब्दी में भीषण अकाल का विवरण राजतरंगिणी से मिलता है।[20]

जातक कथाओं से स्पष्ट है कि दुर्भिक्ष के कारण प्रजा को कष्ट पड़ने पर सारा उत्तरदायित्व राजा का होता था।[21] कौटिल्य के अनुसार दुर्भिक्ष के समय राजा को कर माफ कर देना चाहिए।[22] कौटिल्य ने राजा से यह अपेक्षा की थी कि वह दुर्भिक्ष के समय कृषकों को बीज दे तथा गरीबों मे व प्रजा में धन का वितरण करें।[23] जातक तथा महाभारत में दुर्भिक्ष का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन के पीछे आशय राजा तथा प्रजा को नैतिक की शिक्षा देना रहा होगा। लेखक यह दिखलाना चाहता था कि राजा तथा प्रजा के पापों के ही कारण ईश्वर दण्ड देता है। वास्तविकता यह है कि प्रचीन काल में एसे दुर्भिक्ष नही पड़ते थे, जैसे आजकल पड़ते है।

टिडिड्डियों, चिड़ियों, पशुओं तथा चोरों के कारण भी फसल नष्ट हो जाती थी।[24] बीमारियों के कारण भी फसल नष्ट होने के उदाहरण मिलते है।[25] ओलों से भी फसल नष्ट होने का उल्लेख मिलता है।[26] गुप्तकाल में भी दुर्भिक्ष के कई उल्लेख मिलते है। वराहमिहिर ने अत्याधिक वर्षा के कारण आने वाले बाढ़ के फलस्वरूप पड़ने वाले दुर्भिक्ष का उल्लेख किया है।[27]

स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार सुदर्शन भील का बाँध टूट जाने के कारण आस–पास का सारा क्षेत्र जल–मग्न हो गया था तथा दुर्भिक्ष की स्थिति आ गई थी। वराहमिहिर ने सूखा के कारण पड़ने वाले दुर्भिक्ष का भी उल्लेख किया है। जंगली पशुओं, चुहों, टिडिड्यों तथा चिड़ियों का उल्लेख के कारण भी भारी मात्रा में फसल बर्बाद किये जाने का उल्लेख मिलता है।[28] वराहमिहिर ने भूचाल, ओलों तथा पशुओं और मनुष्यों की महामारियों के कारण भी फसल के नष्ट होने का उल्लेख किया है। ये भी दुर्भिक्ष के कारण बनते थे।

दुर्भिक्ष का एक कारण युद्ध भी था। मगर गुप्त काल में शान्ति व्यवस्था के कारण दुर्भिक्ष युद्ध के कारण नहीं पड़े। युद्धों द्वारा फसलों के नष्ट होने के प्रमाण

कौटिल्य के पहले नही मिलते। ग्रीक राज्यों में युद्ध होने पर शत्रु देश की फसलों नष्ट कर दी जाती थी, किन्तु भारत में इस विचार का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ही मिलता है।[29]

दुर्भिक्ष रोकने के उपाय

1. प्रारंभ से ही अन्नागार की व्यवस्था भारत में रही है कि अकाल के समय जनता को उससे अन्न दिया जा सके। सिन्धु घाटी में मोहनजोदड़ो से मिला अन्नागार इसका प्रथम प्रमाण है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय महास्थानगढ़ और सोहगौरा से प्राप्त अभिलेखों में अन्नागार के होने का उल्लेख है। इसमें महास्थानगढ़ के अभिलेख से स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य था अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए ऋण के रूप में अनाज देना तथा सोहगौरा में सूखे के समय लोगों की सहायता का उल्लेख है। अर्थशास्त्र में अन्नागार की समुचित व्यवस्था के संबंध में निर्देश दिया गया है कि उत्पादन का चौथाई भाग राज्य के कोषागार में आपात काल के लिए संचित किया जाएगा। यदि इससे भी अन्नागार की पूर्ति न हो तो विशेष प्रकार की वसूली करके इसको भरा जाय। ऐसे समय नियति को प्रतिबंधित किया जाय तथा पशु और मनुष्यों की सुविधा के लिए आयात को कर मुक्त किया जाय या कम कर लगाया जाय।[30]

2. कृषकों को बीज देने अकाल पीड़ितों को राज्य की ओर से भोजन देने, उन्हें राज्य की ओर से जनकल्याणकारी कार्यों को कराने के लिए व्यवस्था करनी चाहिए जहाँ कामगरों को कार्य के बदले भोजन दिया जाय, आपातकाल से पीड़ित लोगों को मित्र राज्यों तथा देशों में जाने की छूट देना जब तक अकाल की विभिषिका रहे तथा उनसे आर्थिक सहायता लेकर इसको दूर करने का राज्य का धर्म कौटिल्य ने बताया है।[31]

3. ऐसे समय जानवरों के पालकों को तथा किसानों को कम दर पर चारा देना तथा बीज उपल्बध कराना चाहिए कि जानवरों की रक्षा हो सके और उत्पादन भी होता रहे।[32]

4. कीड़ों से सुरक्षा करना चाहिए कि फसल नष्ट हो। यह राज्य का धर्म था।

5. सिंचाई की समुचित व्यवस्था राजा को करना चाहिए कि अकाल की स्थिति उत्पादन सुविधा में कमी होने से उत्पन्न न हो सके।

6. शासन को बहुत कम सुद पर कृषि नकद तथा अनाज के रूप में किसान को देना चाहिए। महाभारत ने सूद की दर ऐसे ऋण पर एक प्रतिशत बताया है जबकि बौद्ध ग्रंथ अट्ठारह प्रतिशत का उल्लेख करता है।[33]

7. भूमि कर की वसूली ऐसे समय शिथिल कर देनी चाहिए तथा इनमें न्यायिक आधार पर छूट या माफी देनी चाहिए।

8. वैदिक काल की तरह इन्द्र आदि देवताओं की आराधना करनी चाहिए कि वृष्टि वे करें जिससे भूमि की उर्वरता बनी रहे। अथर्ववेद में मंत्रों द्वारा विपदाओं को टालने का प्रयास बताया गया है। साथ ही दैवी प्रकोप को रोकने के लिए यज्ञादि करने की सलाह दी गयी है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. डॉ० शिवस्वरूप सहाय – प्राचीन भारत का समाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ० 347
2. उपर्युक्त, पृ० वही
3. श्रीमति पुर्णेश्वरी द्विवेदी – प्राचीन भारत में कृषि व्यवस्था, प्रारंभिक काल से 600 ई० तक, अप्रकाशित शोध प्रबंध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पृ० 77
4. अथर्ववेद, 4, 50,142, 7, 11
5. अथर्ववेद, 7, 11
6. अथर्ववेद, 4, 15
7. अथर्ववेद, 6, 128
8. अथर्ववेद, 6, 12, 1–4
9. अथर्ववेद, 7, 50
10. छांदोग्य उपनिषद्, 1, 10–1–13
11. महावग्ग, 5, 23
12. सुत्रनिपात, 2, 1
13. चुल्लवग्ग, 6, 21, 1
14. डायोडोरस, 2, 36
15. रामायण, 2, 70
16. महाभारत, 1, 71, 31
17. रामायण, 2, 117
18. महावग्ग, 1–297–8
19. डॉ० शिवस्वरूप सहाय–प्राचीन भारत का समाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ० 348
20. उपर्युक्त, पृ० वही
21. जातक, 2, 367
22. कौटिल्य, 2/1
23. वी० एन० लूनिया – प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ० 395
24. जातक, 5, 336
25. अंगुत्तरकिाय, 4, 279
26. रामायण, 3, 34, 39
27. श्रीमति पूर्णेश्वरी द्विवेदी–प्राचीन भारत में कृषि व्यवस्था, प्रारंभिक काल से 600 ई० तक, अप्रकाशित शोध प्रबंध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पृ० 79
28. उपर्युक्त, पृ० वही
29. उपर्युक्त, पृ० 80
30. आर० के० मुखर्जी–हिन्दू सिभिलाइजेशन, पृ० 348
31. अर्थशास्त्र, 4, 3
32. दीघनिकाय, 5, 2
33. महाभारत, शांतिपर्व, 33, 5

****